जैन धर्म : करुणा की एक अजस्र धारा

श्री सुमत प्रसाद जैन

जैन धर्म में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध षोडशकारण रूप अत्यन्त विशुद्ध भावनाओं द्वारा उत्पन्न होता है। आत्मोन्नयन की चरम सीमा तक पहुंचाने में सहायक सोलह भावनाएं इस प्रकार हैं—(१) दर्शन विशुद्धता (२) विनय सम्पन्नता (३) शीलव्रतों में निरतिचारता (४) छह आवश्यकों में अपरिहीनता (५) क्षणलवप्रतिबोधनता (६) लब्धिसंवेगसम्पन्नता (७) यथाशक्ति तप (८) साधुओं को प्रासुक परित्यागता (९) साधुओं को समाधिसंधारणा (१०) साधुओं की वैयावत्ययोगयुक्तता (११) अरहन्त-भक्ति (१२) बहुश्रुतभक्ति (१३) प्रवचन भक्ति (१४) प्रवचनवत्सलता (१५) प्रवचनप्रभावनता (१६) अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगयुक्तता। परम चिंतक गुस्तव रोथ के अनुसार श्वेताम्बर सम्प्रदाय में तीर्थंकर प्रकृति के अर्जन हेतु बीस भावनाओं का प्रावधान किया गया है।[1]

इस प्रकार के शुभ परिणाम केवल मनुष्य भव में, और वह भी केवल किसी तीर्थंकर या केवली के पादमूल में, होने सम्भव हैं। महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज के अनुसार 'जैनमत में भी केवलज्ञान सभी को प्राप्त हो सकता है, किन्तु तीर्थंकरत्व सब के लिए नहीं है। तीर्थंकर गुरु तथा देशिक है। इस पद पर व्यक्ति-विशेष ही जा सकते हैं, सब नहीं। तीर्थंकरत्व त्रयोदश गुणस्थान में प्रकट होता है, परन्तु सिद्धावस्था की प्राप्ति चतुर्दश भूमि में होती है'[2] संसार सागर को स्वयं एवं दूसरों को पार कराने की उत्कट भावना वाले दिव्य पुरुष ही तीर्थंकर रूप में सम्पूजित होते हैं। श्री काकासाहब कालेलकर की दृष्टि में 'तीर्थंकर का अर्थ है, स्वयं तरकर असंख्य जीवों को भव-सागर से तारनेवाला। तीर्थ यानी मार्ग बताने वाला। जो सच्छास्त्ररूपी मार्ग तैयार करनेवाला है, वह तीर्थंकर है।'[3] अतः तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि में भी करुणा का विशेष माहात्म्य है। प्रथमानुयोग के धर्मग्रन्थों में श्रेणिक राजा द्वारा ध्यान-सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर देते हुए महामुनि श्री गौतम गणधर द्वारा रौद्रध्यान के संबन्ध में जो सरस्वती प्रकट हुई है वह इस प्रकार है :—

"जो पुरुष प्राणियों को रुलाता है वह रुद्र, क्रूर अथवा सब जीवों में निर्दय कहलाता है।'[4] रौद्र ध्यान के भेदों में हिंसानन्द के स्वरूप का विवेचन करते हुए योगीन्द्र शिरोमणि श्री गौतम गणधर जी कहते हैं, "मारने और बांधने आदि की इच्छा रखना, अंग-उपांगों को छेदना, सन्ताप देना तथा कठोर दण्ड देना आदि को विद्वान् लोग हिंसानन्द नामक आर्तध्यान कहते हैं। जीवों पर दया न करने वाला हिंसक पुरुष हिंसानन्द नाम के रौद्र ध्यान को धारण कर पहले स्वयं का घात करता है और तत्पश्चात् भावनावश वह अन्य जीवों का घात कर भी सकता है अथवा नहीं भी। अर्थात् अन्य जीवों का मारा जाना उनके आयु-कर्म के आधीन है परन्तु मारने का संकल्प करने वाला हिंसक पुरुष तीव्र कषाय उत्पन्न होने से अपनी आत्मा की हिंसा अवश्य कर लेता है।'"[5]

अतः जैनधर्म में भावों को प्रधानता दी गई है। हिंसा के अपराध में शारीरिक रूप से लिप्त न होने पर भी भावहिंसा के कारण मनुष्य का पतन हो जाता है। शारीरिक शक्ति एवं सामर्थ्य के अभाव में भी परदुःखकातरता का भाव आत्म-विकास में सहायक होता है।

करुणा के दार्शनिक पक्ष को यदि हम इस समय गौण करके भगवान् महावीर स्वामी और समकालीन भारत की सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक स्थिति का ऐतिहासिक विश्लेषण करें तो यह निश्चित रूप से सिद्ध हो जायेगा कि ततत्कालीन समाज

१. Gustav Roth "The Terminology of the Karana sequence" (Pr. & Tr. A. I. O. Con. 18th Sess. 1955. Annamalainagar, 1958). pp. 250-259
२. आचार्य नरेन्द्र देव, 'बौद्ध-धर्म-दर्शन', भूमिका, पृ० १५-१६
३. काका साहब कालेलकर, 'जीवन का काव्य', पृ० सं० २२
४. प्राणिनां रोदनाद् रुद्रः क्रूरः सत्त्वेषु निर्घृणः। आदिपुराण, एकविंश पर्व, पृ० सं० ४७८ पद्य सं० ४२
५. प्रकृष्टतरदुर्लेश्यात्रयोपोद्बलवृंहितम्। अन्तर्मुहूर्तकालोत्थं पूर्ववद्भाव इष्यते ॥
वधबन्धाभिसंधानमङ्गच्छेदोपतापने। दण्डपारुष्यमित्यादि हिंसानन्दः स्मृतो बुधैः ॥
हिंसानन्दं समाधाय हिंस्रः प्राणिषु निर्घृणः। हिनस्त्यात्मानमेव प्राक् पश्चाद् हन्यान्न वा परान् ॥ (आदिपुराण, एकविंश पर्व, पृ० सं० ४७९ पद्य सं० ४४-४६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में हिंसा का बोलबाला था। स्वर्ग-प्राप्ति के लिए यज्ञशालाओं में मूक प्राणियों की बलि, व्यक्ति-व्यक्ति में धर्म के नाम पर भेद की दृष्टि, पांडित्य-प्रदर्शन और आभिजात्य हितों की संरक्षा के लिए लोकभाषाओं की उपेक्षा, असमर्थ एवं साधनहीन पुरुष एवं नारी की समाजव्यापी विवशता एवं दासता इत्यादि हिंसा के विकराल रूपों की छवियाँ ही तो थीं। अतः इस प्रकार के वातावरण में हिंसा का मानसिक रूप से विरोध करने वाले स्वर उठने स्वाभाविक थे। यह उस काल के लिए गौरव का विषय है कि तत्कालीन समाज में चेतना का मन्त्र फूंकने के लिए ऐसे महाप्राण धर्मपुरुषों का जन्म हुआ जो ईश्वर के अस्तित्व को न मानकर कर्म-फल के महत्त्व को स्वीकार करते थे। मानव-समाज की उन्नति के लिए वास्तव में एक ऐसे आचारशास्त्र की आवश्यकता होती है जो अशुभ कर्म का अशुभ, शुभ कर्म का शुभ, और व्यामिश्र का व्यामिश्र फल अथवा परिणाम को स्वीकार करता हो। अतः उस समाज में करुणा के स्वस्थ दर्शन का विकसित होना समय की अनिवार्यता थी।

बौद्धधर्म में सप्तविध अनुत्तर-पूजा द्वारा बोधिचित्त की महान् उपलब्धि के उपरान्त पूजक की इच्छा होती है कि वह समस्त प्राणियों के सर्व दुःखों का प्रशमन करने में सहायक हो। साधक की भक्तिपूर्वक प्रार्थना के स्वर इस प्रकार हैं, "हे भगवन्! जो व्याधि से पीड़ित हैं, उनके लिए मैं उस समय तक औषधि, चिकित्सक और परिचारक होऊँ, जबतक व्याधि की निवृत्ति न हो, मैं क्षुधा और पिपासा की व्यथा का अन्न-जल की वर्षा से निवारण करूँ, और दुर्भिक्षान्तर कल्प में जब अन्नपान के अभाव से प्राणियों का एक दूसरे का मांस व अस्थि-भक्षण ही आहार हो, उस समय मैं उनके लिए पान-भोजन बनूँ। दरिद्र लोगों का मैं अक्षय धन होऊँ। जिस पदार्थ की वह अभिलाषा करें, उसी पदार्थ को लेकर मैं उनके सम्मुख उपस्थित होऊं।"[1] करुणा से मानवमन को द्रवित कर देने वाली इसी प्रकार की अनुभूतियों से अहिंसा के दर्शन का विकास हुआ। इस विकास की चरम परिणति जैन धर्म में हुई। श्री रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में, "जैनों की अहिंसा बिलकुल निस्सीम है। स्वयं हिंसा करना, दूसरों से हिंसा करवाना या अन्य किसी भी तरह से हिंसा के काम में योग देना, जैन धर्म में सब की मनाही है। और विशेषता यह है कि जैन सम्प्रदाय केवल शारीरिक अहिंसा को ही महत्त्व नहीं देता, प्रत्युत् उसके दर्शन में बौद्धिक अहिंसा का भी महत्त्व है। जैन महात्मा और चिन्तक, सच्चे अर्थों में मनसा, वाचा, कर्मणा अहिंसा का पालन करना चाहते थे। अतएव उन्होंने अपने दर्शन को स्याद्वादी अथवा अनेकान्त-वादी बना दिया। जैन शास्त्रकारों ने पृथ्वी, अग्नि, जल एवं वायु में भी जीव तत्त्व की परिकल्पना की और अपनी सदय दृष्टि के कारण इस प्रकार के प्रावधान किए जिससे उनका अवरोध न हो।"[2] श्री एच० जी० रॉलिनसन ने जैन आचारांग सूत्र में पृथ्वी, अग्नि, जल एवं वायु कायिक के जीवों में जीवन के अस्तित्व के दर्शन किए।[3] अतः विश्वव्यापी जीवों की रक्षा के लिए जैनाचार्यों के मन में कोमल अनुभूतियों का होना आवश्यक था। इसीलिए उन्होंने समस्त जीवों की रक्षा के लिए मंगल उपदेश दिया है। श्री अतीन्द्रनाथ बोस ने सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् जैकोबी को आधार मानकर यह निष्कर्ष निकाला है कि सर्वप्रथम भगवान् महावीर स्वामी ने ही पेड़-पौधों एवं पशु-पक्षियों के जीवन की सुरक्षा के लिए विशेष आज्ञा प्रसारित की थी।[4]

भगवान् बुद्ध एवं भगवान् महावीर स्वामी के उपदेशों से प्रभावित होकर तत्कालीन जगत् में एक वैचारिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ और समाज में हिंसापरक अनुष्ठानों एवं मांसाहार को बुरी निगाह से देखा जाने लगा। भारतीय आयुर्वेद एवं चिकित्साशास्त्र के विकास ने धर्मानुरागी समाज को मनुष्य-जाति के साथ-साथ पशु-पक्षियों के लिए भी औषधालय एवं अस्पतालों को खोलने की प्रेरणा दी। पं० जवाहरलाल नेहरू के अनुसार "ईसा से कब्ल की तीसरी या चौथी सदी में जानवरों के अस्पताल भी थे। वह शायद जैनियों और बौद्धों के मजहबों के असर से बने थे, जिनमें कि अहिंसा पर जोर दिया गया है।"[5] बौद्ध एवं जैन धर्म से प्रेरणा ग्रहण कर प्रियदर्शी सम्राट् अशोक ने इस प्रकार की गतिविधियों को राजकीय संरक्षण प्रदान किया। धर्मप्रिय सम्राट् अशोक ने अपने एक आदेश में कहा है: —"अगर कोई उनके साथ बुराई करता है, तो उसे भी प्रियदर्शी सम्राट् जहां तक होगा सहन करेंगे। अपने राज्य के वन के निवासियों पर भी प्रियदर्शी सम्राट् की कृपा-दृष्टि है, और वह चाहते हैं कि ये लोग ठीक विचार वाले बनें, क्योंकि अगर ऐसा वे न करें तो प्रियदर्शी सम्राट् को पश्चात्ताप होगा। क्योंकि परम पवित्र महाराज चाहते हैं कि जीवधारी मात्र की रक्षा हो, और उन्हें आत्म-संयम, मन की शान्ति और आनन्द प्राप्त हो।"[6]

---

१. आचार्य नरेन्द्र देव, 'बौद्ध-धर्म दर्शन', पृ० १८८

२. श्री रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', पृ० ११३

३. H.G. Rawlinson—'India—a short cultural History'. London, 1937. P.43.

४. Atindra Nath Bose—'Social and Rural Economy in Northern India, 600 B.C. to 209 A. D.' Calcutta, 1942. P. 84.

५. पं० जवाहरलाल नेहरू, 'हिन्दुस्तान की कहानी,' पृ० १३२

६. पं० जवाहरलाल नेहरू, 'हिन्दुस्तान की कहानी,' पृ० १५४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलिंग-विजय के उपरान्त पश्चात्ताप के क्षणों में सम्राट् अशोक किसी को भी बंदी रूप में देखना पसन्द नहीं कर सकते थे। अत: लोकोपकार के कार्य में संलग्न उस महान् सम्राट् ने स्थान-स्थान पर मनुष्यों एवं पशुओं के अस्पताल खुलवाकर राज्य की नीति में करुणा के धर्म को साकार कर दिया। इस संबन्ध में गिरनार का शिलालेख विशेष रूप से द्रष्टव्य है :—"राजानो सर्वत्र देवानांप्रियस प्रियदसिनो राञो द्वे चिकीछा कता – मनुसचिकीछा च पसुचिकीछा च औसुढानि च यानि मनुसोपगानि च यत यत नास्ति सर्वत्रा हारापितानि च रोपापितानि।"[1] अर्थात् – देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो प्रकार की चिकित्सा की—मनुष्य-चिकित्सा और पशु-चिकित्सा। मनुष्यों औरपशुओं के उपयोग के लिए जहां-जहां औषधियाँ नहीं थीं, वहाँ सब जगह से लायी गईं और बोई गईं।

भगवान् महावीर एवं भगवान् बुद्ध द्वारा प्रतिपादित अहिंसा और करुणा का दर्शन अपनी संवेदनशीलता एवं वैचारिक पृष्ठभूमि के कारण तत्कालीन विदेशी चिन्तकों एवं मनीषियों में भी लोकप्रिय हो गया था। सुप्रसिद्ध गणितज्ञ पिथोगोरस जीवहिंसा का प्रबल विरोधी था। प्रो० एल० सी० जैन ने गणित इतिहास का विशिष्ट अन्वेषण करते हुए इस संबंध में कुछ रोचक जानकारियां प्रस्तुत की हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) ऐसा प्रतीत होता है, कि ईसा से (प्राय: ५८२—५०० वर्ष) पूर्व मिस्र में प्रबल स्वेच्छा से रहते हुए पिथेगोरस ने जिनके संसर्ग में स्वत: को विभिन्न विज्ञानों से (a lot of knowledge without intellect)[2] परिचित किया था, उनके मिशन का प्रभाव उसके नैतिक जीवन में पशु के प्रति (मुक्ति हेतु), विशुद्ध दया की छाप छोड़ बैठा था :

"But this crazy crank Pythagorus had made quite a fuss when he saw one of the prominent citizens taking a stick to his dog. "Stop beating that dog!" he had shouted like a madman. "In his howls of pain I recognise the voice of a friend who died in Memphis twelve years ago. For a sin such as you are committing he is now the dog of a harsh master. By the next turn of the Wheel of Birth, he may be the master and you the dog. May he be more merciful to you than you are to him. Only thus can he escape the Wheel. In the name of Apollo my father, stop, or I shall be compelled to lay on you the tenfold curse of the tetractys."

(२) इस चदुचंकमण (tetractys), चतुर्गति बंधन (स्वस्तिक प्ररूपणा) से विमुक्ति हेतु पिथेगोरस और आगे बढ़कर, हरे पौधों के प्रति भी, ममता प्रदर्शित करता है :

"Then, too, there was all this talk about what he ate, or rather about what he would not eat. What could the man possibly have against beans? They were a staple of everyone's diet; and here was Pythagorus refusing to touch them because they might harbour the souls of his dead friends.....He had even deterred a cow from trampling a patch of beans by whispering some magic word in its ear."

इसी प्रकार, (एकेंद्रिय जीव, बालों से निर्मित) ऊनी कपड़ों से सम्बन्धित अभ्युक्ति निम्न प्रकार है :

"He also tells that the Pythagoreans did not bury their dead in woollen clothing. This looks more like religious ritual than like mathematics. The Pythagoreans, who were held up to ridicule on the stage, were presented as superstitious, as filthy vegetarians, but not as mathematicians".

(३) पुन:, मांस-भक्षण निषेध की शैली में आत्मा की नियत संख्या के रूप में गणित का प्रवेश है :

"The thought of all the souls they might have left shivering in the void by devouring their own goats and swine made the good Samians extremely unhappy. A few weeks more of these upsetting suggestions, and they would all be strict vegetarians—except for beans.

Equally upsetting was the ghastly thought that some of their own children might be malicious little monsters with no souls to restrain their bestial instincts. For Pythagorus had assured them that the total number of souls in the universe is constant".

प्राचान मिश्र में निम्नकोटि के जीवों के प्रति दया, मांसभक्षण निषेध एवं ब्रह्मचर्य पूजा का उल्लेख आर्चविशप ह्वेतली ने इस प्रकार किया है—

"In Egypt there are hospitals for superannuated cats, and the most loathsome insects are regarded with tenderness;....," "Chastity, abstinence from animal food, ablutions, long and mysterious ceremonies of preparations of initiation, were the most prominent features of worship....."

१. गिरनार का शिलाभिलेख, ले० सं० २, पंक्ति ४-६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री रामधारी सिंह 'दिदकर' के अनुसार इस्लामी रहस्यणद (तसव्वुफ) के प्रमुख उन्नयक सन्त अबुलअला अलमआरी (१५०७ ई०) भी इन्हीं प्रभाव क्षेत्रों के कारण शाकाहारी था। वह दूध, मधु और चमड़े का प्रयोग नहीं करवा था। पशु-पक्षियों के लिए उसके हृदय में असीम सम्वेरणा एवं अनुकम्पा का भाव था। वह नैतिक नियत्रों का सभल प्रचारव था। वह स्वयं भी ब्रह्मचर्य एवं तपस्वियों के आचरणशास्त्र का पालन करता था।

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी के कथनानुसार परमअर्हत के विरुद से विभूषित एवं चौदह हजार एक सौ चालीस मन्दिरों का निर्माण कराने वाले सम्राट् कुमारपाल ने जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र की मंत्रणा पर राज्य में पशु-हत्या पर रोक लगवा दी थी।[1] डा० मोहनचंद के अनुसार सम्राट् कुमारपाल ने एक अर्धमृत बकरे के कारुणिक दृश्य को देखकर अपने राज्य में किसी भी पशु को चोट पहुँचाने पर रोक लगवा दी थी। उन्होंने ११६० ई० में एक विशेष आज्ञा निकालकर १४ वर्षों के लिए राज्य में पशु-बलि, मुर्गों अथवा अन्य पशु-पक्षियों की लड़ाई एवं कबूतरों की दौड़ पर प्रतिबंध लगवा दिया। राज्य में कोई भी व्यक्ति, चाहे वह जन्म कितना भी हीन क्यों न हो, वह अपनी जीविका के लिए किसी भी प्रकार के प्राणी की हत्या नहीं कर सकता था। इस प्रकार की राजाज्ञा से प्रभावित होने वाले कसाइयों की जीविका की क्षतिपूर्ति के लिए राज्यकोष से तीन वर्षों के लिए धन देने का भी विशेष प्रबन्ध किया गया जिससे उनकी हिंसक आदत छूट जाए।[2]

भारत में सर्वधर्म सद्भाव के वास्तविक प्रतिनिधि मुगल सम्राट् अकबर की दया तो वास्तव में निस्सीम एवं अनुकरणीय है। अपनी सहज उदारता से 'दीने-इलाही' को प्राणवान् कर धर्मज्ञ अकबर विश्व सभ्यता एवं संस्कृति के उन्नायक महापुरुषों की श्रेणी में विराजमान हो गया है। उसको प्रारम्भिक अवस्था में जैन विद्वान् उपाध्याय पद्मसुन्दर जी और तत्पश्चात् मुनिश्री हरिविजय जी का संसर्ग मिल गया था। उपरोक्त संसर्गों और गहन चिन्तन ने अकबर को वैचारिक रूप में अनेकान्तवादी बना दिया था। जन-श्रुतियों में तो अकबर पर जैन-सम्राट् होने का भी आरोप लगाया जाता है। श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' ने एक रोचक लोककथा का उल्लेख करते हुए 'संस्कृति के चार अध्याय' में यह जानकारी दी है कि नरहरि नामक हिन्दी-कवि ने गौओं की ओर से निम्नलिखित छप्पय अकबर को सुनाया था :—

अरिहुं दन्त तृन धरै ताहि मारत न सबल कोइ।
हम सन्तत तृन चरहिं बचन उच्चरहिं दीन होइ।
अमृत छीर नित स्रवहिं बच्छ महि थम्भन जावहिं।
हिन्दुहिं मधुर न देहिं कटुक तुरूकहिं न पियावहिं।
कह कवि 'नरहरि' अकबर सुनो, विनवत गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहि मारियत, मुयहु चाम सेवहिं चरन।

गौओं की प्रार्थना से द्रवित होकर सम्राट् अकबर ने अपने राज्य के बहुसंख्यक नागरिकों की धार्मिक मान्यता को समादर देकर करुणा के दर्शन को मुखरित किया था। श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' के अनुसार धर्म अकबर की राजनीति का साधन नहीं था, प्रत्युत् यह उसकी आत्मा की अनुभूति थी। अबुल फजल और बदायूनी के विवरणों से मालूम होता है कि अकबर सूफियों की तरह कभी-कभी समाधि में आ जाता था और कभी-कभी सहज ज्ञान के द्वारा वह मूल सत्य के आमने-सामने भी पहुंच जाता था। एक बार वह शिकार में गया। उस दिन ऐसा हुआ कि घेरे में बहुत से जानवर एक साथ पड़ गए और वे सब मार डाले गए। अकबर हिंसा के इस दृश्य को सह नहीं सका। उसके अंग-अंग कांपने लगे और तुरन्त उसे एक प्रकार की समाधि हो आई। इस समाधि से उठते ही उसने आज्ञा निकाली कि शिकार करना बंद किया जाए। फिर उसने भिखमंगों को भीख दी, अपना माथा मुंडवाया और धार्मिक भावना के इस जागरण की स्मृति में एक भवन का शिलान्यास किया। जंगल के जीवों ने अपनी वाणीविहीन वाणी में उसे धर्म का रहस्य

---

१. K. M. Munshi—'The Glory That Was Gurjaradesa'. Part III. The Imperial Gurjaras. Bombay, 1944 p. 191-192.

२. Dr. Mohan Chand,—Śyainika Śāstram (The art of hunting in ancient India) Intro. pp.23.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बतलाया और अकबर की जागरूक आत्मा ने उसे पहचान लिया। यह, स्पष्ट ही, उपनिषदों और जैन धर्म की शिक्षा का प्रभाव था।[1] जैन सन्तों की धर्मदेशना से प्रभावित होकर उसने मांसाहार का त्याग कर दिया और इतिहासज्ञ श्री डब्ल्यु क्रुकी के अनुसार तो सम्राट् अकबर ने जैन धर्म के महापर्व पर्यूषण के १२ दिनों में अपने राज्य में पशु-हत्या को भी बन्द करवा दिया था।[2] इसी गौरवशाली परम्परा में उसके उत्तराधिकारी सम्राट् जहांगीर के फरमान दृष्टिगोचर होते हैं।

राजधानी के श्री दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर जी कूचा सेठ में मुगल शहंशाह जहांगीर के शाही फरमान २६ फरवरी सन् १६०५ ई० की नकल के अनुसार सम्राट् ने जैन धर्म के मुकद्दश इबादती माह भादों के बारा मुकद्दश ऐय्याम के दौरान मवेशियों और परिन्दों को जबह करना बन्द किया। फरमान में आदेश दिया गया है—

"हमारी सलतनत के मुमालिक महरूसा के जुमला हुक्काम, नाजिमान जागीर दारान को वाजेह हो फतूहाते दीनवी के साथ हमारा दिलीमनशा खुदाये बर तर की जुमला मखलूक की खुशनवूदो हासिल करना है। आज ईद के मौका पर मा बदौलत को कुछ जैन (हिन्दुओं) की तरफ से इस्तेदा पेश की गई है कि माह भादों के मौके पर उन के बारा मुकद्दश ऐय्याम में जानवरों का मारना बन्द किया जाये। हम मजहबी उमूर में हर मजहब व मिल्लत के अगराज व मकासद की तकमील में हर एक की हौसला अफजाई करना चाहते हैं, बल्के हर जो रूह को एक जैसा खुश रखना चाहते हैं। इसलिये यह दरखास्त मंजूर करते हुए हम हुक्म देते हैं कि भादों के इन बारा मजहबी ऐय्याम में जो (जैन हिन्दुओं) के मुकद्दश और इबादती ऐय्याम हैं इनमें किसी किस्म की कुरबानी या किसी भी जानवर को हलाक करने की मुमानियत होगी। और इस हुक्म की तामील न करने वाला मुजरिम तसव्वर होगा। यह फरमान दवामी तसव्वर हो। दस्तखत मुबारिका, शहनशाह जहाँगीर (मुहर)" वास्तव में जहाँगीर एक रहमदिल इन्सान था। उसको प्रकृति के विविध रूपों से गहरा प्यार था। अतः उसके दरबार में कलाकारों ने अपनी कोमल तूलिका से बादशाह को प्रिय पुष्पों, पशु-पक्षियों के चित्र बहुलता से चित्रण किए हैं।

मंसूर ने तो चौपायों और पक्षियों के चित्रांकन में ही अपनी कला को समर्पित कर दिया था। जहाँगीरकालीन 'मुर्गे का चित्र'—जो आज कलकत्ते की आर्ट गैलरी की शोभा है—के सौन्दर्य को तो आज तक कोई भी चित्रकार मूर्त रूप नहीं दे पाया है। बादशाह अकबर की उदार नीति शाहजहाँ के राज्यकाल के पूर्वार्ध तक पुष्पित होती रही है। पुर्तगाली यात्री सेबाश्चियन मानदिक के यात्रा-विवरण से यह ज्ञात होता है कि शाहजहां के मुस्लिम अफसरों ने एक मुसलसान का दाहिना हाथ इसलिए काट डाला था कि उसने दो मोर-पक्षियों का शिकार किया था और बादशाह की आज्ञा थी कि जिन जीवों का वध करने से हिन्दुओं को ठेस पहुंचती है, उनका वध नहीं किया जाए।[3]

प्रायः यह धारणा हो गई है कि करुणा की वाणी को रूपायित करने वाले इस प्रकार के अस्पताल मुसलमान शासकों के समय में समाप्त हो गए थे। किन्तु समय-समय पर भारत में भ्रमण के निमित्त पधारने वाले पर्यटकों के विवरणों ने इस धारणा को खंडित कर दिया है। सुप्रसिद्ध पुर्तगाली यात्री ड्यूरे बारबोसा (जो १५१५ ई० में गुजरात में आया था), ने जैन अहिंसा के स्वरूप पर बारीकी से प्रकाश डालते हुए इस सत्य की सम्पुष्टि की है कि जैनधर्मानुयायी मृत्यु तक की स्थिति में अभक्ष्य (मांस इत्यादि) का सेवन नहीं करते थे। उसने जैनियों की ईमानदारी का उल्लेख करते हुए कहा है कि वे किसी भी जीव की हत्या को देखना तक पसन्द नहीं करते। उसने राज्य द्वारा मृत्युदण्ड प्राप्त हुए अपराधियों को भी जैन-समाज द्वारा बचाने के प्रयासों का उल्लेख किया है। उसने जैन समाज की पशु-पक्षियों (यहां तक कि हानिप्रद जानवरों) की सेवा का उल्लेख एवं उनके द्वारा निर्मित अस्पतालों और उनकी व्यवस्था का उल्लेख भी किया है।[4]

सुप्रसिद्ध पर्यटक पीटर मुंडे ने भी अपने यूरोप एवं एशिया के भ्रमण (१६०८—१६६७) में पशु-पक्षी चिकित्सालयों को देखा था। कैम्बे में उसने रुग्ण पक्षियों के लिए जैनों द्वारा बनाए गए अस्पताल का विवरण सुना था। उसके यात्रा वृत्तांतों में अनेक पर्यटकों

---

१. श्री रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय' पृ० ३०७

२. W. Crooke 'An Introduction of the Popular Religion and Folklore of Northern India Allahabad, 1894. 338.

३. श्री रामधारी सिंह 'दिनकर', 'संस्कृति के चार अध्याय' पृ० ३०६

४. (a) M.S. Commissariat—'A history of Gujarat', Vol. 1. Calcutta, 1938. p. 255.
(b) Mansel Lognworth Dames—'The Book of Duarte Barbosa'. Translated from the Portuguese by M. L. Dames. Vol. I, London, 1918. (The Hakluyt Society, Second Series, No. 44). P. 110. n. 2.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के नामों का उल्लेख है जिन्होंने गुजरात में जैनों द्वारा समर्पित अस्पतालों (जिन्हें 'पिंजरापोल' कहा जाता है) का भ्रमण किया था।[1] एल० रूजलैट ने भी अपनी पेरिस से प्रकाशित पुस्तक में जैनों की पशु-सम्पदा के प्रति उदार दृष्टि का उल्लेख करते हुए बम्बई एवं सूरत में जैन समाज द्वारा प्रेरित एवं संचालित पशु-पक्षी चिकित्सालयों का उल्लेख किया है।[2]

श्री आर० कस्ट[3], रोबर्ट निधम कस्ट,[4] एड्ली थियोडोर बेस्टरमैन और अरनेस्ट क्रेवे[5], श्री आर० वी० रसेल और श्री हीरालाल[6], विलियम क्रुक[7], एडवर्ड कोंजे[8], ओ० टी० बेट्टेनी[9], श्री ए० एल० खान[10], जे० विलसन[11] इत्यादि सभी विद्वानों ने जैन समाज की दार्शनिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक एवं अन्य महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों पर प्रकाश डालते हुए जैनधर्म की सर्वप्रमुख विशिष्टता पशु-पक्षियों के प्रति अप्रतिम अनुराग एवं करुण भाव की भूरि-भूरि सराहना की है। जैनियों के अहिंसात्मक दृष्टिकोण, मानवजाति के प्रति उनकी नैष्ठिक सेवा एवं पशु-पक्षियों पर अमानवीय व्यवहार के प्रति उसकी सतत् जागरुकता की भी सभी ने सराहना की है।

इतिहास के लम्बे सफर में जैन समाज ने प्रायः पैतृक संस्कारों के कारण भोजन के विषय में कभी भी कोई समझौता नहीं किया है।

इसीलिए सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री श्री एस०टी० मोसीस[12] ने अपने उत्तरी, दक्षिणी आर्कट एवं दक्षिणी कनारा के सर्वेक्षण के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला था कि वहां का जैन समाज मछली, मांस और मांस से बने हुए किसी भी पदार्थ का सेवन नहीं करता है। उपर्युक्त मूल्यांकन क्षेत्र-विशेष में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारत में इन्हीं सत्यों की स्थापना कर सकता है।

सुप्रसिद्ध इतिहास-मनीषी श्री वी० ए० स्मिथ ने जैन धर्मानुयायियों के अहिंसापरक आचरण को विशेष महत्त्व दिया है।[13] अतः करुणा की आधार-भूमि पर खड़ा हुआ यह समाज अहिंसा के तात्त्विक विवेचन के कारण शाकाहारी है। आज विश्व में पशु-पक्षियों की हत्या के विरोध एवं शाकाहार के समर्थन में वातावरण बन रहा है। बौद्धधर्म एव जैनधर्म के आलोक से प्रकाशित होकर माननीय श्री एल० एच० ऐनडरसन[14] (१८९४ ई०) ने मूक पशु-पक्षियों की हत्या को रुकवाने के लिए शिकागो में किस प्रकार से पशुओं का कत्ल किया जाता है इस विषय पर भाषण किया था। उन्होंने वहां के समाज के विवेक को झकझोरते हुए पशु-पक्षियों की हत्या न किए जाने की विशेष प्रार्थना की थी। उनके स्वर में अनेक शक्तिशाली स्वरों ने योग देकर करुणा की परम्परा को आगे बढ़ाया है।

---

1. Richard Cannac Temple—'The Travels of Peter Munday in Europe and Asia, 1608-1667'. Edited by R. C. Temple. Vol. II : Travels in Asia, 1628-1634. London, 1914. (The Hakluyt Society, second Series, No. 35).
2. L. Rousselet—'L'Inde des Rajahs'—Paris, 1875. P. 17-18.
3. R. Cust—'Les religions et les langues de l' Inde'. Paris. 1880. pp. 47-48.
4. Robert Needham Cust—'Linguistic and Oriental Essays written from the year 1847 to 1887'. Second Series, London, 1887. p. 67-68.
5. Edly Theodore Besterman, Ernest Crawby—'Studies of Savages and Sexes'. London. 1929. p. 170.
6. R. V. Russell and HiraLal—'The tribes and castes of the central provinces of India', London 1916 Vol. I, p. 219-31.
7. William Crooke—'Religion and Folklore of Northern India'. Oxford, 1926. P. 349.
8. Edward Conze—'Buddhism: its Essence and Developments'. Oxford (2nd edi.) 1953. p. 61-62.
9. O. T. Bettany—'The World's Inhabitants or Mankinds, Animals and Plants'. New York, 1988. p. 307.
10. A. L. Khan—'A short History of India'. (Hindu period), 1926. P. 22.
11. J. Wilson—'Final Report on the Revision of Settlement of the Sirsa District in the Punjab (Lahore), 1979-83. P. 101.
12. S. T. Moses—'Fish and Religion in South India'. (QJMS, xiii, 1923, Pp. 549-554). P. 550-551.
13. (a) V. A. Smith—'The Buddhist Emperor of India'—Oxford, 1909(2nd Edi.) P. 58.
    (b) V. A. Smith—'Asoka'. Third Edition. Oxford, 1920. P. 58.
14. L. H. Anderson—'Spirit of the Buddhists and the Jainas Regarding Animal Life Dawning in America'—How Animals are slaughtered in Chicago.(Jbts, II. 1894, Appendix 4).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीसवीं शताब्दी के युगपुरुष महात्मा गाँधी ने अपने विदेश प्रवास से पूर्व एक जैन सन्त की प्रेरणा से तीन नियम व्रत रूप में अंगीकार किए थे। लोक कल्याण के वह मंगल नियम थे—मद्य, मांस और परस्त्री के संसर्ग से बचकर रहना। इन्हीं नियमों के पालन हेतु उन्होंने अनेक प्रकार के प्रयोग किए और पाश्चात्य शाकाहारियों के तर्कों से प्रभावित होकर उन्होंने दूध का भी त्याग कर दिया। दूध का त्याग करते समय उनकी दृष्टि में यह तथ्य भी निहित था कि भारत में जिस हिंसक ढंग से पशु-पालन एवं दूध उत्पादन किया जाता है वह एक सम्वेदनशील सुहृदय मनुष्य के लिए सर्वथा असह्य था। खेड़ा-सत्याग्रह में दुर्बलता से अत्यधिक प्रभावित हो जाने पर भी चिकित्सकों, परिचितजनों के असंख्य अनुरोधों और राष्ट्र सेवा के संकल्प को साकार रूप देने की भावना से ही उन्होंने बकरी का दूध लेना स्वीकार कर लिया था। इस संदर्भ में यह भी स्मरणीय है कि दूध छोड़ने का नियम लेते समय उनकी दृष्टि में बकरी का दूध त्याज्य श्रेणी में नहीं था।

गौवंश की निर्मम हत्या के विरुद्ध उन्होंने शक्तिशाली स्वर उठाये। गाय में मूर्तिमंत करुणामयी कविता के दर्शन करते हुए उन्होंने उसे सारी मूक सृष्टि के प्रतिनिधि के रूप में ही मान्यता दे दी थी। उनकी सम्वेदना में सजीव प्राणियों के अतिरिक्त धरती की कोख से उत्पन्न होने वाली वनस्पतियाँ भी रही हैं। सेवाग्राम आश्रम में संतरों के बगीचे में परम्परानुसार फल आने के अवसर पर मिठास इत्यादि के लिए पानी बन्द कर देने की कृषि पद्धति थी। गांधी जी को इससे मर्मान्तिक पीड़ा हुई और उन्होंने आश्रमवासियों से कहा यदि मुझे कोई पानी बगैर रखे और प्यास से मेरी मृत्यु हो तो तुम्हें कैसा लगेगा। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' यह सदा याद रखो। भारतवर्ष का जैन समाज उन सभी के प्रति हृदय से कृतज्ञ है। राजधानी में मुगलों की सत्ता के प्रमुख केन्द्र लालकिले की पर्दे वाली दीवार के ठीक सामने 'परिन्दों का अस्पताल' जैनधर्म की सहस्राब्दियों की परम्परा को स्थापित किए हुए है। इस धर्मार्थ चिकित्सालय की परिकल्पना १९२४ ई० में कुछ धर्मानुरागी श्रावकों ने की थी। वर्तमान में दिगम्बरत्व को सार्थक रूप एवं शक्ति प्रदान करने में अग्रणी परमपूज्य आचार्यशिरोमणि चारित्रचक्रवर्ती स्व० श्री श्री शान्तिसागर जी महाराज की धर्मदेशना से प्रभावित होकर इस चिकित्सालय का शुभारम्भ श्रमण संस्कृति के प्रभावशाली केन्द्र श्री लाल मन्दिर जी (चांदनी चौक) में हो गया। अस्पताल की उपयोगिता को अनुभव करते हुए प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रन्थ के आराध्यपुरुष धर्मध्वजा करुणा एवं मैत्री की जीवन्त मूर्ति परमपूज्य आचार्यरत्न देशभूषण जी महाराज के पावन सान्निध्य में भारत सरकार के केन्द्रीय गृहमन्त्री लौहपुरुष श्री गोविन्दवल्लभ पन्त ने २४ नवम्बर, १९५७ को अस्पताल के नए भवन का उद्घाटन किया था। राजधानी के जैन समाज के युवा कार्यकर्त्ता श्री विनयकुमार जैन की लगन से अस्पताल में तीसरी और चौथी मंजिल को परमपूज्य आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माता जी के सान्निध्य में नया रूप प्रदान किया गया है। पिछले वर्ष इस अस्पताल का कुछ विकास हुआ है जिसके कारण देश-विदेशों में इसकी लोकप्रियता बढ़ी है और धर्म के मिशन के प्रति विश्वव्यापी सद्भावनाएँ प्राप्त हो रही हैं।

वास्तव में पशु-पक्षी चिकित्सालय किसी भी धर्म के व्यावहारिक मन्दिर हैं। इस प्रकार के मन्दिर धर्म के स्वरूप को वास्तविक वाणी देते हैं। जैनविद्याविशेषज्ञ डा० मोहनचंद ने २६ दिसम्बर १९८२ को अस्पताल की सुझाव पुस्तिका में अपनी सम्मति देते हुए लिखा है :—"संसार में अपनी भूख को शान्त करने के लिए जो पक्षियों को अपना आहार बनाते हैं, ऐसे लोग, काश ! इस अस्पताल को देख लें तो शायद उन्हें उपदेश देने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।"

जैनधर्म के आद्य तीर्थंकर श्री ऋषभदेव से लेकर आजतक करुणा की जो अजस्र धारा मानव-मन को अपूर्व शान्ति एवं सुख का सन्देश दे रही है उस सात्त्विक भाव को विश्वव्यापी बनाने के लिए जैन समाज को संकल्प के साथ रचनात्मक रूप देना चाहिए। विश्व की संहारक शक्तियों में सदाशयता का भाव भरने के लिए करुणा के मानवीय एवं हृदयस्पर्शी चित्रों का प्रस्तुतीकरण होना आवश्यक है। आज का विश्व भगवान् महावीर स्वामी, भगवान् बुद्ध एवं राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की वाणी को साकार रूप में देखना चाहता है। अतः सहस्राब्दियों से करुणा एवं अहिंसा के प्रतिनिधि जैन समाज को कुछ इस प्रकार के वैचारिक कार्यक्रम बनाने चाहिएँ जिससे आज की प्रज्ञावान पीढ़ी को सही दिशा मिल सके। क्या जैन समाज आज की परिस्थितियों में भगवान् महावीर के ओजस्वी व्यक्तित्व से प्रेरणा ग्रहण कर, हिंसा के विरुद्ध अनेकान्तवाद का अमोघ शस्त्र लेकर वैचारिक आन्दोलन करने की स्थिति में है ? वैसे आज इस आन्दोलन की विशेष आवश्यकता है। देखें, करुणा के दर्शन को साकार रूप देने के लिए इस बार कौन आता है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org